1.गूगल का वादा, चुनावी विज्ञापनों में बरतेगा ज्यादा पारदर्शिता

- ट्विटर के बाद गूगल ने भी आगामी लोकसभा चुनावों के मद्देनजर अपने प्लेटफॉर्म पर राजनीतिक विज्ञापनों में ज्यादा पारदर्शिता बरतने का वादा किया है। गूगल का कहना है कि वह ऐसे विज्ञापनों पर विज्ञापनदाता के नाम के साथ-साथ विज्ञापन के लिए खर्च रकम का विवरण भी देगा।बयान के मुताबिक, 'ऑनलाइन चुनावी विज्ञापनों में और ज्यादा पारदर्शिता लाने के लिए गूगल भारत के लिए विशेष रूप से राजनीतिक विज्ञापन पारदर्शिता रिपोर्ट और तलाशने योग्य राजनीतिक विज्ञापन लाइब्रेरी शुरू करेगा। इसके जरिये गूगल प्लेटफॉर्म पर चुनावी विज्ञापन खरीदने वालों और उस पर खर्च रकम की व्यापक जानकारी उपलब्ध कराई जाएगी।'
  USE IN PAPER2 –GOVERNANCE,DIGITAL,SOCIAL –MEDIA,DATA DEMOCRACY

2.हिरासत में यातना के खिलाफ कानून के मसौदे पर फीडबैक दें राज्य

- सुप्रीम कोर्ट ने हिरासत में यातना और अमानवीय व्यवहार को रोकने के लिए प्रस्तावित केंद्र सरकार के कानून के मसौदे पर सभी राज्यों को फीडबैक देने का निर्देश दिया है। सर्वोच्च अदालत ने इसके लिए राज्य के मुख्य सचिवों को तीन हफ्ते का समय दिया है। ऐसा इसलिए भी जरूरी है क्योंकि हिरासत में यातना के खिलाफ संयुक्त राष्ट्र समझौते पर हस्ताक्षर करने वाले देशों में भारत भी शामिल है।
  GOVERNANCE,JAIL REFORM,CUSTODIAL DEATH

3.पत्नियों के गुजारा भत्ता मांगने पर पति दरिद्र हो जाते हैं: सुप्रीम कोर्ट

- सुप्रीम कोर्ट का कहना है कि जब अलग हो चुकी पत्नी गुजारे भत्ते की मांग करती है तो पति कहना शुरू कर देते हैं कि वह दरिद्रता में जी रहे हैं या फिर दिवालिया हो चुके हैं। सर्वोच्च अदालत ने यह टिप्पणी तब की जब हैदराबाद के एक बड़े अस्पताल में काम कर रहे डॉक्टर को हिदायत दी कि वह अपनी नौकरी इसलिए नहीं छोड़ दे कि उसकी अलग हो चुकी पत्नी गुजारा-भत्ता मांग रही है।
- सुप्रीम कोर्ट ने मंगलवार को दिए एक अहम फैसले में कहा है कि किसी हिंदू महिला की मुस्लिम पुरुष के साथ शादी अनियमित या अवैध है, लेकिन उनकी शादी से पैदा होने वाली संतान वैध है।
- कोर्ट ने यह भी कहा,इस तरह की अनियमित शादी का कानूनी प्रभाव यह भी है कि महिला मेहर की हकदार तो होती है, लेकिन पति की संपत्ति पर उसका हक नहीं होता, लेकिन उनसे पैदा बच्चा नियमित शादी से पैदा बच्चों की तरह की वैध है और पिता की संपत्ति पर उसका हक बनता है।
  SOCIETY,WOMEN ISSUE,

4.सभी के लिए हो आर्थिक विकास: नडेला

- माइक्रोसॉफ्ट के सीईओ सत्य नडेला ने कहा है कि अगले दौर का ग्लोबलाइजेशन ऐसा होना चाहिए जिसमें आर्थिक विकास हर किसी के लिए समान हो। कोई भी व्यक्ति भूखा न रहे और किसी को भी शरणार्थी कैंप में रहने की आवश्यकता न हो।
- वल्र्ड इकोनॉमिक फोरम के दौरान शेपिंग ग्लोबलाइजेशन 4.0 पर एक सत्र को संबोधित करते हुए उन्होंने कहा कि ग्लोबल कम्युनिटी के रूप में हम सभी को धीमी पड़ी आर्थिक विकास दर को रफ्तार देनी होगी। हमें आर्थिक विकास की मुख्य चुनौतियों का सामना करना होगा। अगले दौर के ग्लोबलाइजेशन में समान विकास बहुत जरूरी है। समान विकास और तेज रफ्तार की दोहरी चुनौती का एक साथ सामना करना है
- चौथी औद्योगिक क्रांति टेक्नोलॉजी और इनोवेशन के जरिये आनी चाहिए ताकि विकास दर को तेज किया जा सके।
- कर्मचारियों को दोबारा ट्रेनिंग देना जरूरी : विप्रो-बदलती तकनीक के दौर में नौकरी जाने की चिंताएं खत्म करने के लिए कंपनियों और सरकारों को कर्मचारियों को दोबारा ट्रेनिंग देने पर निवेश करना चाहिए। उन्होंने कहा कि कंपनियों को स्थानीय संस्कृति समझने और उसमें ढलने की क्षमता विकसित करनी चाहिए।

INCLUSIVE GROWTH,AI TECH,EMPLOYMENT,4TH GENERATION TECH

5.शांति संधि के लिए व्लादिमीर पुतिन और शिंजो एबी मिले

- कुरील द्वीपों को लेकर चल रहे विवाद को सुलझाने के लिए मंगलवार को रूस के राष्ट्रपति व्लादिमीर पुतिन से मुलाकात की। प्रशांत महासागर में स्थित चार द्वीपों को सोवियत संघ की सेना ने द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान हथिया लिया था। जापान इन पर रूस की संप्रभुता मानने से इन्कार करता है। इसके चलते द्वितीय विश्वयुद्ध खत्म होने के इतने साल बाद भी दोनों देशों के बीच शांति संधि नहीं हो पाई है।नए साल पर अपने संबोधन में एबी ने इन द्वीपों पर रहने वालों को अपनी नागरिकता बदलने के लिए तैयार रहने की बात की थी। इस पर रूस ने कहा था कि जापान को द्वितीय विश्वयुद्ध के नतीजे को स्वीकार करते हुए द्वीपों पर रूस की संप्रभुता स्वीकार लेनी चाहिए। रूस के 90 फीसद लोग भी जापान को एक भी द्वीप लौटाने के पक्ष में नहीं हैं।

USE IN RUSSIA-JAPAN ISSUE,2ND WORLD WAR TREATY

6.फ्रांस सरकार ने गूगल पर लगाया 404 करोड़ रुपये का जुर्माना

- फ्रांस के डाटा निगरानीकर्ता ने सोमवार को यूरोपीय संघ के सख्त जनरल डाटा प्रोटेक्शन रेगुलेशन (जीडीपीआर) का पहली बार इस्तेमाल करते हुए अमेरिकी सर्च इंजन गूगल पर 50 मिलियन यूरो (404.73 करोड़ रुपये) के जुर्माने की घोषणा की। एक बयान में बताया गया कि गूगल अपनी डाटा नीतियों के तहत पारदर्शी और आसानी से सुलभ जानकारी प्रदान करने में विफल रहा।

USE IN DATA DEMOCRACY,PRIVACY

7.सोशल मीडिया से दूर रहकर भी प्राइवेसी को खतरा

- फेसबुक और ट्विटर जैसे सोशल नेटवर्किंग प्लेटफॉर्म के जरिये लोगों की निजता में सेंध लगने की बातें सामने आती रहती हैं। इन खबरों के बीच ऐसे लोग अक्सर तसल्ली में रहते हैं, जिन्होंने सोशल मीडिया से दूरी बना रखी है। हाल में हुए एक अध्ययन के नतीजे ऐसे लोगों की भी नींद उड़ा सकते हैं। यह अध्ययन अमेरिका की यूनिवर्सिटी ऑफ वरमॉन्ट और ऑस्ट्रेलिया की यूनिवर्सिटी ऑफ एडिलेड शोधकर्ताओं द्वारा किया गया है। इसमें बताया गया है कि यदि आप सोशल मीडिया साइट्स से दूर रहते हैं तो भी आपकी निजी जानकारियां उजागर हो सकती हैं और इनका इस्तेमाल आपकी निजता में सेंध लगाने वाली कंपनियां कर सकती हैं।
- अध्ययन के लिए वैज्ञानिकों ने ट्विटर पर 13,905 यूजर्स के तीन करोड़ से ज्यादा पब्लिक पोस्ट का विश्लेषण किया। वैज्ञानिकों ने पाया कि आपके आठ-नौ दोस्तों के ट्विटर मैसेज की मदद से आपके प्रोफाइल पर गए बिना ही इस बात का आसानी से अंदाजा लग जाता है कि आपका पिछला ट्वीट क्या था। शोधकर्ता जेम्स बैग्रो ने कहा, 'जब आप किसी सोशल साइट पर लॉगइन करते हैं, तो केवल अपनी ही नहीं, अपने कई दोस्तों की प्राइवेसी भी लीक करते हैं।'
- इन चीजों का लग जाता है पता
- शोधकर्ताओं ने कहा कि आपके दोस्तों की पोस्ट की मदद से कोई कंपनी आसानी से आपका प्रोफाइल तैयार कर सकती है। वह जान सकती है कि आपका राजनीतिक झुकाव किस ओर है, आपको कैसे उत्पाद पसंद हैं और आप किस धार्मिक रुझान के हैं। बैग्रो ने कहा, 'नतीजों से स्पष्ट है कि अपनी निजता को बचाने के लिए अकेले आपकी कोशिशें पर्याप्त नहीं हैं। इसमें आपके दोस्तों का सहयोग भी जरूरी है।'

8.चार गुना तेजी से पिघल रही है ग्रीनलैंड की बर्फ

- हाल के एक शोध में सामने आया है कि ग्रीनलैंड में ग्लेशियर की बर्फ पिछले 350 वर्षों की अधिकतम गति से पिघल रही है। यह क्रम बना रहा तो आने वाले दो दशक में समुद्रतल के बढ़ने का सबसे बड़ा कारक यही होगा।
- पृथ्वी के अन्य हिस्सों के मुकाबले आर्कटिक दो गुना तेजी से गर्म हो रहा है। ग्रीनलैंड का ज्यादातर हिस्सा आर्कटिक में ही पड़ता है। इसी कारण वहां की बर्फ तेजी से पिघल रही है। 2012 में ग्रीनलैंड के ग्लेशियर की करीब 400 अरब टन बर्फ पिघली थी, जो 2003 के मुकाबले चार गुना ज्यादा है। 2013-14 के दौरान बर्फ पिघलना करीब रुक गया था। उसके बाद फिर बर्फ पिघलने की दर में तेजी आ गई।
- क्यों रुका था बर्फ का पिघलना?
- विशेष पारिस्थितिक चक्र के कारण ग्रीनलैंड में गर्म हवाएं चलने का क्रम बदलता रहता है। जिस चक्र में गर्म हवाएं चलती हैं उस दौरान बर्फ बहुत तेजी से पिघलती है जबकि गर्म हवाएं ना हो तो बर्फ का पिघलना रुक जाता है। इसी कारण 2013-14 में बर्फ का पिघलना रुक गया था।

EDITORIAL

• प्राथमिक शिक्षा की चिंताजनक तस्वीर

- हाल ही में 13वीं एनुअल स्टेटस ऑफ एजुकेशन रिपोर्ट-2018 (असर) प्रकाशित की गई। 'असर' ग्रामीण भारत के सरकारी स्कूलों में बच्चों के नामांकन और उनकी शैक्षणिक प्रगति पर किया जानेवाला देश का सबसे बड़ा वार्षिक सर्वेक्षण है। शिक्षा के क्षेत्र में कार्यरत देश के सबसे बड़ी स्वयंसेवी संस्था 'प्रथम' द्वारा वर्ष 2005 से कराए जा रहे इस सर्वेक्षण के नतीजे सरकार के लिए दर्पण का काम करते हैं। इस बार सर्वेक्षण में देश के 596 जिलों के 3,54,944 घरों और 3 से 16 आयु वर्ग के 5,46,527 छात्रों को शामिल किया गया था। 3 से 16 आयु वर्ग के बच्चों के स्कूलों में नामांकन और 5 से 16 आयु वर्ग के बच्चों की पढ़ने तथा गणित के सवाल हल करने की बुनियादी क्षमताओं के आकलन के लिए देश के 15,998 सरकारी स्कूलों को सर्वेक्षण के दायरे में लाया गया था। 'असर' रिपोर्ट न सिर्फ देश में बुनियादी शिक्षा की बदहाली की तस्वीर बयां कर रही है, अपितु शिक्षा व्यवस्था में समाहित बुनियादी समस्याओं तथा प्राथमिक शिक्षा के गिरते स्तर की तरफ देश के नीति-नियंताओं का ध्यान भी खींच रही है।
- सर्वेक्षण के बाद जो तस्वीर उभर कर सामने आई है, उसके मुताबिक कक्षा तीन के करीब 73 फीसद बच्चे घटाव के सवाल हल नहीं कर पाते, जबकि क्लास दो के केवल 26.6 फीसद बच्चे ही घटाव का सवाल हल करने में सक्षम हैं। वहीं कक्षा 5 के करीब 70 फीसद बच्चे भाग के सवाल हल नहीं कर पाते हैं। आठवीं पास करने वाले वाले ज्यादातर छात्रों को सामान्य गणित के सवाल भी नहीं आते हैं। इसके अलावा करीब 27 फीसद छात्र हिंदी का पाठ नहीं पढ़ पाते हैं! आठवीं कक्षा के 56 फीसद बच्चों को भाग देने में कठिनाई होती है, जबकि इसी कक्षा के 44.4 फीसद बच्चे ही एक अंक के भाग के सवालों को हल करने में सक्षम हैं। हालांकि 'असर' के कई आंकड़े सुकून देने वाले भी हैं। मसलन समग्र नामांकन की बात की जाए तो यह पिछले दस वर्षों में सर्वाधिक दर्ज की गई है। 2018 में 6 से 14 आयु वर्ग के बच्चों का नामांकन 95 फीसद था, जो सुखद आश्चर्य का विषय है। इसके अलावा इसी आयु वर्ग में अनामांकित बच्चों की संख्या में भी पहली बार गिरावट दर्ज की गई है। यह गिरावट 2.8 फीसद है। यह गिरावट सरकारी प्रयासों के प्रतिफल को प्रदर्शित करती है।
- 'असर' रिपोर्ट के मुताबिक 11 से 14 आयु वर्ग की स्कूल न जाने वाली लड़कियों के संख्या में भी भारी गिरावट देखी गई है। 2006 में जहां 10.3 फीसद लड़कियां स्कूल नहीं जा पाती थीं, वहीं 2018 में यह आंकड़ा 4.1 फीसद दर्ज किया गया है। इससे प्रतीत होता है कि भारत सरकार की 'बेटी

बचाओ, बेटी पढ़ाओ' जैसे कार्यक्रम धरातल पर अच्छा काम कर रहे हैं। वहीं ये आंकड़े इस बात का भी संकेतक हैं कि लड़कियों की शिक्षा के प्रति अभिभावकों की पुरातन सोच भी तेजी से बदल रही है। लड़कियों के स्कूल जाने की रफ्तार बढ़ने का एक बड़ा कारण स्कूलों में शौचालय की व्यवस्था का होना भी है। आमतौर पर विद्यालय में शौचालय के न होने या उसकी बुरी स्थिति में होने से लड़कियां स्कूल जाने से कतराती हैं, जिससे उनकी पढ़ाई बाधित होती हैं। हालांकि 'असर' के ताजा सर्वेक्षण के मुताबिक साल 2018 में 66.4 फीसद स्कूलों में छात्रओं के लिए अलग शौचालय की व्यवस्था थी, जबकि 2010 में केवल 32.9 फीसद स्कूलों में ही छात्रओं के लिए अलग शौचालय की व्यवस्था थी।

- देश में प्रचलित त्रिस्तरीय शिक्षा प्रणाली में प्राथमिक शिक्षा को शिक्षा व्यवस्था का मुख्य आधार माना गया है, जिसे दुरुस्त किए बिना माध्यमिक और उच्च शिक्षा के स्वर्णिम भविष्य की कल्पना नहीं की जा सकती! सच तो यह है कि प्राथमिक शिक्षा का गुणात्मक विकास करके ही नागरिकों और फिर राष्ट्र को उन्नति के पथ पर अग्रसर रखा जा सकता है। भारत में बुनियादी शिक्षा की कल्पना सर्वप्रथम महात्मा गांधी ने की थी। उन्होंने 1937 में वर्धा में आयोजित अखिल भारतीय शैक्षिक सम्मेलन में भारतीय शिक्षा में सुधार के लिए 'नई तालीम' नामक योजना पेश की थी, जिसे बाद में 'बुनियादी शिक्षा' और 'वर्धा योजना' भी कहा गया। गांधी जी ने बच्चों को राष्ट्रव्यापी, नि:शुल्क और अनिवार्य शिक्षा देने का प्रस्ताव रखा था। इसके अलावा वे गुणवत्तापूर्ण शिक्षा, मातृभाषा में शिक्षा प्रदान करने तथा रोजगारपरक शिक्षा के हिमायती भी थे।
- राष्ट्रपिता महात्मा गांधी की संकल्पना को धरातल पर उतारने के लिए भारतीय संसद ने वर्ष 2009 में शिक्षा का अधिकार अधिनियम (आरटीई) पारित किया था। इसके तहत देश में 6 से 14 साल के सभी बच्चों को मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने की संवैधानिक व्यवस्था की गई। यह कानून 1 अप्रैल, 2010 से देशभर में लागू तो कर दी गई, लेकिन बच्चों को विद्यालय से जोड़ने तथा शिक्षकों के रिक्त पदों को भरने में उल्लेखनीय वृद्धि नहीं देखी गई है। आलम यह है कि देश को जहां अभी भी लाखों शिक्षकों की जरूरत है तो वहीं दूसरी ओर कई राज्यों में शिक्षकों की नियुक्तियां अटकी हुई हैं, जिसे भरने में राज्य सरकारें ढुलमुल रवैया अपनाती रही हैं। जो शिक्षक हैं भी, उनमें से अनेक प्रशिक्षण और गुणवत्ता में कमी से जूझ रहे हैं। जब शिक्षक ही अप्रशिक्षित होंगे तो बच्चों को कैसी शिक्षा मिलेगी, यह आसानी से समझा जा सकता है। यूनेस्को की एक रिपोर्ट के अनुसार दुनिया के जिन 74 देशों में शिक्षकों की भारी कमी है, उसमें भारत का स्थान दूसरा है। वैसे तो शिक्षा अधिकार कानून-2009 के तहत प्राथमिक स्तर पर छात्र-शिक्षक अनुपात 30:1 और उच्च प्राथमिक स्तर पर यह अनुपात 35:1 निर्धारित किया है, लेकिन कई सरकारी स्कूलों में यह स्थिति संतोषजनक नहीं है।
- विडंबना यह है कि कहीं जरूरत भर के शिक्षक नहीं हैं तो कहीं बच्चों की उपस्थिति ही कम है। समय पर कभी छात्रों तो कभी शिक्षकों का विद्यालय नहीं पहुंचना तथा गैर-शैक्षणिक कार्यो को शिक्षकों के कंधे पर डालना भी शिक्षा व्यवस्था की प्रचलित समस्या रही है, जिसे नकारा नहीं जा सकता। असर रिपोर्ट की मानें तो कर्नाटक और तमिलनाडु जैसे चंद राज्यों में छात्रों की उपस्थिति 90 फीसद से ऊपर है, जबकि विद्यालयों में शिक्षकों की उपस्थिति के मामले में जो राज्य सबसे आगे हैं, उनमें झारखंड, ओडिशा, कर्नाटक और तमिलनाडु शामिल हैं। शेष राज्यों में स्थिति संतोषजनक नहीं है, जो ग्रामीण शिक्षा की बदहाली की तस्वीर बयां करती है।
- सरकारी उपेक्षा की वजह से बुनियादी शिक्षा निरंतर हाशिये पर जा रही है। सरकारी स्कूलों में बुनियादी सुविधाओं का अभाव तथा गुणवत्तापूर्ण शिक्षा में कमी की वजह से अभिभावक अपने बच्चों के लिए निजी स्कूलों की तरफ देख रहे हैं। हालांकि एक समय था, जब सरकारी स्कूलों को सम्मान की नजर से देखा जाता था, पर आज उसे उपेक्षा के भाव से देखा जा रहा है। स्थिति यह है कि प्राथमिक विद्यालय की निकटतम उपलब्धता के बावजूद कक्षा में बच्चों की उपस्थिति कम नजर आ रही है। स्कूल के समय बच्चे या तो खेलते नजर आ जाते हैं या घर के कामों में बड़ों का हाथ बंटाते हैं!

आलम यह है कि मध्याह्न् भोजन योजना, छात्रवृति तथा मुफ्त पाठ्य-पुस्तकों के वितरण की व्यवस्था भी बच्चों को स्कूल में रोके रखने में सफल नहीं हो पा रही हैं। वहीं ग्रामीण विद्यालयों में विद्यालय-परित्यक्त छात्रों की संख्या का दिनोंदिन बढ़ना भी चिंता की बात है।

- सरकारी स्कूलों में आधारभूत संरचना की कमी और मिड-डे-मील की समुचित व्यवस्था न होने से बच्चे स्कूल जाने से कतराते हैं, जबकि गुणवत्तापूर्ण शिक्षा न दिए जाने के कारण आज निम्न आय वर्गीय परिवार के अभिभावक भी अपने बच्चों को किसी निजी स्कूल में भेजना ही श्रेयस्कर समझ रहे हैं। सच्चाई यह भी है कि देश के सरकारी विद्यालय दिनोंदिन अपनी चमक खोते जा रहे हैं। इन विद्यालयों से अनियमितता की लगातार शिकायतें आ रही हैं। सवाल गंभीर है कि आखिर सरकारी विद्यालयों में करोड़ों रुपये की फंडिंग के बावजूद गुणवत्तापूर्ण शिक्षा बच्चों की पहुंच से कोसों दूर क्यों है? वह तब जब सरकारी विद्यालयों पर ग्रामीण भारत की एक बड़ी आबादी निर्भर है!
- 18 अगस्त, 2015 को इलाहाबाद हाईकोर्ट ने सरकारी विद्यालयों में गुणवत्तापूर्ण शिक्षा बहाली का एक असाधारण सुझाव दिया था कि नौकरशाह एवं मंत्री अपने बच्चों को सरकारी स्कूलों में पढ़ाएं। अगर इक्का-दुक्का अपवाद को छोड़ दिया जाए तो उक्त आदेश व्यवहृत नहीं हो पाया। यदि हमारे राजनेता, नौकरशाह और अन्य अधिकारी अपने बच्चों का इन विद्यालयों में नामांकन करवाते तो निश्चित रूप से चंद माह में ही उनकी स्थिति सुधर जाती, लेकिन ऐसा हो न सका। परेशानी तो यह भी है कि शिक्षा व्यवस्था से जुड़े लोगों का ध्यान केवल बच्चों की विद्यालयी उपस्थिति और राष्ट्र की साक्षरता दर बढ़ाने पर है, लेकिन राज्य में पर्याप्त संख्या में शिक्षकों की नियुक्ति है या नहीं इस पर उनका ध्यान नहीं है? विद्यालयों में नियमित रूप से शिक्षक आते हैं या नहीं? आते हैं तो क्या पढ़ाते हैं? इन सब मुद्दों से किसी नेता या अधिकारी को तनिक भी सरोकार नहीं रहा।
- बहरहाल एसोचैम की एक रिपोर्ट में कहा गया है कि भारत यदि अपनी मौजूदा शिक्षा व्यवस्था में प्रभावशाली बदलाव नहीं करता है तो विकसित देशों की बराबरी करने में उसे करीब सवा सौ साल लग जाएंगे। गौरतलब है कि भारत अपनी शिक्षा व्यवस्था पर सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) का महज 3.83 फीसद हिस्सा ही खर्च करता है, जबकि अमेरिका, ब्रिटेन और जर्मनी में यह हिस्सेदारी क्रमश: 5.22, 5.72 और 4.95 प्रतिशत है। हालांकि इस संबंध में संयुक्त राष्ट्र का मानक यह है कि हर देश शिक्षा व्यवस्था पर अपनी जीडीपी का कम से कम 6 फीसद खर्च करे। देश में शिक्षा सुधारों के लिए डीएस कोठारी की अध्यक्षता में 1964 में गठित कोठारी समिति ने भी अपनी रिपोर्ट में कुल राष्ट्रीय आय के 6 फीसद हिस्से को शिक्षा पर व्यय करने का सुझाव दिया था, जबकि वास्तविकता यह है कि इस क्षेत्र में महज तीन से चार फीसद ही राशि आवंटित हो पाती है। जाहिर है शिक्षा में समुचित निवेश किए बिना शिक्षा व्यवस्था में सुधार करना दूर की कौड़ी होगी।
- शिक्षा नागरिकों की मुलभूत आवश्यकता है। सामाजिक बंधनों, बुराइयों और कुरीतियों के खात्मे की दिशा में शिक्षा एक बड़ा हथियार है। शिक्षा सामाजिक एवं वैयक्तिक शोषण तथा अन्याय के खिलाफ लड़ने और संघर्ष की ताकत प्रदान करती है। हालांकि शिक्षा का उद्देश्य केवल राष्ट्र के नागरिकों को साक्षर बना देना ही नहीं होना चाहिए, बल्कि लोगों में काबिलियत का विकास कर उन्हें अपनी योग्यतानुसार रोजगार की चौखट तक पहुंचाना भी होना चाहिए। शिक्षा व्यवस्था में समाहित समस्याओं से निपटे बिना न तो देश को विकास के पथ पर अग्रसर रखा जा सकता है और ना ही 'विश्व गुरु' बनने का गौरव प्राप्त किया जा सकता है।

• 2, सूक्ष्म और लघु उद्यमों की बड़ी होती समस्या

- कुछ महीने पहले गैर बैंकिंग वित्तीय कंपनियां (एनबीएफसी) खूब चर्चा में थीं। इन दिनों एमएसएमई (सूक्ष्म, लघु एवं मझोले उद्यमों) पर जोर है। दोनों ही गलत वजहों से सुर्खियों में रहे या हैं। एनबीएफसी क्षेत्र तब चर्चा में आया जब कई लोगों का ध्यान इस क्षेत्र की परिसंपत्ति और देनदारी के अंतर पर गया। यह अंतर विशुद्ध रूप से वृद्धि को लेकर पनपे लालच और जोखिम का सही मूल्यांकन नहीं करने से उपजा था। अल्पावधि की दरों में अचानक बढ़ोतरी से क्षेत्र वाकिफ नहीं

हो पाया। वहीं एमएसएमई क्षेत्र ऋण की कमी से दो चार है और उनमें से कई तो कारोबार में नुकसान के कारण अपना पुराना कर्ज तक नहीं चुका पा रही हैं।

- एमएसएमई क्षेत्र के ऋण की जरूरत पूरी करने में बैंकों से अधिक योगदान एनबीएफसी का था लेकिन अब उन्हें भी अपने ऋण खातों का ध्यान रखना पड़ रहा है। हकीकत तो यह है कि उनमें से कई अपने पोर्टफोलियो बेच रही हैं क्योंकि उनके पास ऋण संबंधी परिसंपत्तियों के निपटान के लिए अधिक नकदी नहीं है। सूक्ष्म एवं लघु उद्योगों को लेकर बैंकिंग क्षेत्र का जोखिम वर्ष 2013-14 के सकल घरेलू उत्पाद के 3.1 फीसदी से घटकर 2017-18 में 2.22 फीसदी रह गया। इसी अवधि के दौरान मझोले उद्यमों को बैंक ऋण का स्तर जीडीपी के 1.1 फीसदी से कम होकर 0.62 फीसदी रह गया।

- इसके पश्चात एनबीएफसी ने अवसर देखकर इस क्षेत्र में प्रवेश किया। एमएसएमई क्षेत्र की फाइनैंसिंग में उसकी हिस्सेदारी दिसंबर 2015 के 7.9 फीसदी से बढ़कर जून 2018 में 11.3 फीसदी हो गई। उन्होंने बैंक से ऋण लेकर एमएसएमई क्षेत्र को देना आरंभ किया। वर्ष 2017-18 तक एनबीएफसी को बैंक ऋण बढ़कर 26.9 फीसदी तक हो गया। ट्रांस यूनियन सिबिल लिमिटेड और सिडबी के तिमाही प्रकाश एमएसएमई पल्स के मुताबिक एमएसएमई ऋण में सरकारी बैंकों की हिस्सेदारी जून 2017 के 55.8 फीसदी से घटकर जून 2018 में 50.7 फीसदी रह गई। इसी अवधि में निजी क्षेत्र के बैंकों की हिस्सेदारी 28.1 फीसदी से बढ़कर 29.9 फीसदी हो गई। जबकि एनबीएफसी का ऋण 9.6 फीसदी से बढ़कर 11.3 फीसदी हो गया।

- इस अवधि में एमएसएमई क्षेत्र में सरकारी बैंकों का फंसा हुआ कर्ज 14.5 फीसदी से बढ़कर 15.2 फीसदी हो गया लेकिन निजी बैंकों का ऐसा ही कर्ज घटकर 3.9 फीसदी रहा। एनबीएफसी का फंसा कर्ज 5 प्रतिशत था। आलोक मिश्रा और जय तनखा द्वारा संपादित फाइनैंस इंडिया रिपोर्ट 2018 बताती है कि कैसे कुल औद्योगिक ऋण में एमएसएमई की हिस्सेदारी कम हो रही है। दो वर्ष से यह 13.8 फीसदी पर स्थिर है जबकि 2010 में यह 15.7 फीसदी थी। सन 2010 और 2018 के बीच मझोले दर्जे के उद्योगों की हिस्सेदारी में नाटकीय कमी आई और वह 10.1 फीसदी से गिरकर 3.8 फीसदी रह गई। परंतु बड़े उद्योगों की हिस्सेदारी 74.1 फीसदी से बढ़कर 82.3 फीसदी हो गई।

- एमएसएमई के लिए ऋण की कमी तो है ही, साथ ही नोटबंदी और वस्तु एवं सेवा कर ने भी उन्हें बहुत झटका दिया है। यह बात स्वयं आरबीआई के एक अध्ययन में कही गई है। कपड़ा तथा रत्न एवं आभूषण कारोबार में अनुबंधित श्रम को झटका लगा क्योंकि कर्मचारियों को नकद वेतन मिलता था। नई कर व्यवस्था ने अनुपालन की लागत बढ़ा दी। उनका टर्नओवर घटा और कई इकाइयों में कर्मचारियों की छुट्टी कर दी गई। श्रम ब्यूरो के छठे वार्षिक रोजगार-बेरोजगारी सर्वे के मुताबिक 2016-17 में यानी नोटबंदी वाले साल बेरोजगारी दर चार वर्ष के उच्चतम स्तर पर थी। अब चुनाव करीब हैं और एमएसएमई क्षेत्र नए सिरे से चर्चा में है। जीएसटी परिषद ने जीएसटी पंजीयन का दायरा 20 लाख से बढ़ाकर 40 लाख रुपये कर दिया है और करीब 20 लाख उपक्रमों को इसके दायरे से बाहर कर दिया।

- उसके पहले आरबीआई ने संकटग्रस्त एमएसएमई के एकबारगी ऋण पुनगठन के रूप में कर्जदारों को 25 करोड़ रुपये के फंड और गैर फंड जोखिम के निस्तारण का अवसर दिया था। जून 2018 में आरबीआई ने एमएसएमई के फंसे कर्ज के मामले में बैंकों को भी रियायत दी। यह रियायत ऐसे एमएसएमई ऋण से संबंधित थी जो पहले केवल जीएसटी के अनुपालन वाली इकाइयों को हासिल थी। एमएसएमई को सहयोग की आवश्यकता है लेकिन असल समस्या फंसे हुए कर्ज में इजाफे की है।

प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने अप्रैल 2015 में प्रधानमंत्री मुद्रा योजना की शुरुआत की थी ताकि गैर कारोबारी, गैर कृषि छोटे और सूक्ष्म उपक्रमों को 10 लाख रुपये तक का ऋण दिया जा सके। वाणिज्यिक बैंक, क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक, सूक्ष्म वित्त बैंक, सहकारी बैंक, सूक्ष्म वित्त संस्थान और एनबीएफसी आदि सभी ऐसे ऋण देते हैं। इनकी ब्याज दर 8 से 12 फीसदी होती है। सरकारी बैंकों द्वारा दिए गए मुद्रा ऋण का एनपीए 2016-17 के 3,790.35 करोड़ रुपये से करीब दोगुना बढ़कर 2017-18 में 7,277.31 करोड़ रुपये हो गया। बैंकों ने कुल मिलाकर 2017-18 में 2.53 लाख करोड़ रुपये और 2016-17 में 1.80 लाख करोड़ रुपये का ऋण वितरित किया था। वर्ष 2018-19 में 3 लाख करोड़ रुपये के ऋण वितरण का लक्ष्य है।

- मार्च 2018 तक सरकारी बैंकों के मुद्रा ऋण का 3.43 प्रतिशत एनपीए है जबकि कुल ऋण का 5.30 प्रतिशत एनपीए है। इन्क्लूसिव फाइनैंस इंडिया रिपोर्ट में कहा गया है कि एमएसएमई क्षेत्र में घटती हिस्सेदारी के बावजूद सरकारी बैंक 10 लाख रुपये से नीचे के ऋण में 79 फीसदी हिस्सेदारी रखते हैं। बैंकिंग उद्योग का कुल फंसा हुआ कर्ज इसका 11.2 फीसदी है। देश में करीब 6.3 करोड़ एमएसएमई हैं जिनमें 11.1 करोड़ से अधिक कामगार हैं। यह देश के विनिर्माण उत्पादन के 45 प्रतिशत और निर्यात के 40 प्रतिशत के लिए जवाबदेह है। परंतु इन्हें लक्षित ऋण नहीं मिल पाता।

- बैंक जमा के लिए लक्ष्य तय हो सकता है क्योंकि बैंकर किसी भी व्यक्ति से जमा करने को कह सकता है। ऐसे जमाकर्ताओं को खाते में पैसा भी नहीं रखना होता है और अगर वे दो वर्ष में एक ही लेनदेन करें तो भी बैंक शिकायत नहीं करेंगे। परंतु यह बात ऋण के मामले में नहीं लागू होती। दबाव में कई बैंक मुद्रा ऋण लेने वालों को तलाशते रहते हैं। इस प्रक्रिया में उनका ऋण जोखिम बढ़ता जाता है। आज हमारे सामने जो कुछ है, वह तो महज शुरुआत है।

• 3, डेटा संरक्षण

- अहमदाबाद में वाइब्रेंट गुजरात सम्मेलन को संबोधित करते हुए रिलायंस इंडस्ट्रीज के चेयरमैन मुकेश अंबानी ने व्यक्तिगत डेटा के स्वामित्व से जुड़े ऐसे सवालों की ओर ध्यान आकृष्ट किया जो आने वाले दिनों में नियामकों के लिए महत्त्वपूर्ण विषय हो सकते हैं। अंबानी ने कहा कि नई विश्व व्यवस्था में डेटा की महत्ता पुरानी व्यवस्था में महत्त्वपूर्ण रहे तेल के समान है और यह नई तरह की संपदा है। उन्होंने कहा कि इसी वजह से भारतीय डेटा का नियंत्रण और स्वामित्व भारतीयों के पास होना चाहिए, न कि कंपनियों, खासतौर पर विदेशी कंपनियों के पास। इस मसले को लेकर अंबानी की राय सही है और उन्हें इस बात के लिए बधाई दी जानी चाहिए कि वह निरंतर इस मुद्दे को उठाते रहे हैं कि डेटा स्वामित्व भविष्य में देश की वृद्धि के लिहाज से अहम है। बहरहाल, देश में हालिया नियामकीय और नीतिगत कदमों के संदर्भ में देखे तो कुछ ऐसे सवाल भी हैं जो अंबानी के कदमों से संबंधित हैं।

- अंबानी, जियो के भी मालिक हैं जिसने देश के दूरसंचार और डेटा क्षेत्र में उथलपुथल मचा दी है। ऐसे में जब वह कहते हैं कि देश के डेटा पर कंपनियों का नहीं बल्कि भारतीयों का नियंत्रण और अधिकार होना चाहिए तो वह गलत नहीं कहते। यह बात अलग है कि भारतीय और वैश्विक कंपनियों के बीच अंतर रेखांकित किए जाने को यहां उनके द्वारा अपने फायदे के लिए इस्तेमाल की गई बात कहा जा सकता है। परंतु इसे देश में डेटा स्वामित्व की उपभोक्तान्मुखी नीति तैयार करने का न तो आधार माना जा सकता है और न ही माना जाना चाहिए। एक बार जब डेटा स्वामित्व का अधिकार निजी तौर पर भारतीयों को मिल गया है तो यह उन पर छोड़ देना चाहिए कि वे उसका क्या करते हैं। आखिरकार यह उनकी संपत्ति ठहरी। अगर उनको किसी गैर भारतीय कंपनी से अच्छी कीमत या अच्छी सेवा मिलती है तो उसे यह अधिकार उन्हें देने का हक होना चाहिए। हां, ऐसा राष्ट्रीय सुरक्षा

को ध्यान में रखकर ही किया जाना चाहिए। यह मुक्त व्यापार का मूलभूत सिद्धांत है जो यहां भी लागू होता है। अन्य क्षेत्रों की तरह यहां भी यह सुनिश्चित करेगा कि उपभोक्ताओं को प्रतिस्पर्धी शक्तियों के बीच उच्चतम संभावित मूल्य प्राप्त हो। इसका विकल्प यह हो सकता है कि प्राथमिकता वाली भारतीय कंपनियों का एक समूह बनाया जाए जो प्रतिस्पर्धा से परे हो ताकि वे उपभोक्ताओं का लाभ ले सकें। डिजिटल क्षेत्र में बॉम्बे क्लब जैसी लॉबीइंग की दलील स्वीकार्य नहीं है।

- इस चर्चा का संदर्भ ध्यान देने लायक है। हाल के दिनों में कंपनियों और नियामकों के बीच डेटा के स्थानीयकरण की बात कई बार उभरी है। भारतीय रिजर्व बैंक ने गत वर्ष विभिन्न पेमेंट सिस्टम को आदेश दिया था कि वे अपने डेटा को स्थानीय स्तर पर रखें ताकि केंद्रीय बैंक उसकी बेहतर निगरानी कर सके। यह सुविचारित कदम नहीं था क्योंकि इससे भुगतान तंत्र की लागत में इजाफा होना था और देश के नागरिकों की निजता में कमी भी आनी तय थी। इतना ही नहीं सरकार द्वारा नियुक्त एक समिति ने मांग की कि न केवल भुगतान बल्कि भारतीय नागरिकों से जुड़े काम कर रही तमाम कंपनियों के डेटा सेंटर भारत की सीमा में स्थापित किए जाएं। ऐसा ही नियम ई-कॉमर्स कंपनियों पर भी लागू किया जा सकता है। ये तमाम बातें कारोबार के लिए अस्वीकार्य गतिरोध खड़े करती हैं और भारतीय डेटा के संरक्षण के नाम पर उपभोक्ताओं को ही नुकसान पहुंचाती हैं। ऐसे नियमन के केंद्र में भारतीय उपभोक्ता होने चाहिए, न कि भारतीय कंपनियां या अफसरशाह। सरकार और नियामकों को अंबानी की बातों पर ध्यान देना चाहिए लेकिन उनका क्रियान्वयन इस तरह नहीं किया जाना चाहिए कि केवल भारतीय कंपनियों को लाभ हो।